RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

ओ३म्
साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 45, अंक : 20 एक प्रति 2 : रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 9 अगस्त, 2020
विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121
दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 19, 6-9 अगस्त 2020 तदनुसार 18 श्रावण, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

निष्काम कर्मयोगी-योगीराज श्रीकृष्ण

लेखकः श्री सुदर्शन शर्मा प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

योगीराज श्री कृष्ण भारतीय संस्कृति के आधार स्तम्भ हैं। मर्यादा पुरूषोत्तम राम और योगीराज श्रीकृष्ण जैसे महापुरूषों के कारण हमारी संस्कृति और सभ्यता जिंदा है। योगीराज श्रीकृष्ण का जीवन एक निःस्पृह एवं निष्काम कर्मयोगी का रहा है। योगीराज श्रीकृष्ण जी का सम्पूर्ण जीवन धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने के लिए समर्पित रहा। निःस्पृह कर्मयोगी की तरह जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने हमेशा धर्म का साथ दिया।

11 अगस्त को प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी कृष्ण जन्माष्टमी का पर्व मनाया जा रहा है। योगीराज श्रीकृष्ण का पूरा जीवन प्रेरणादायक है। अगर उनके जीवन से प्रेरणा ली जाए तभी जन्माष्टमी का मनाना सार्थक हो सकता है। जन्माष्टमी का पर्व मनाते हुए श्री कृष्ण के जीवन से शिक्षा ग्रहण करें। उनके जीवन का प्रत्येक पक्ष उज्ज्वल और पवित्र है। श्री कृष्ण महाराज महान् योगी थे क्योंकि योगी ही संयमी होते हैं। अपनी सभी इन्द्रियों पर उनका पूर्ण अधिकार था। गृहस्थी होते हुए भी वह तपस्वी थे। उनकी धर्मपत्नी रूक्मिणी ने एक बार यह इच्छा प्रकट की कि मैं आप जैसा पुत्र चाहती हूं। इसके उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा कि देवी इसके लिए तुम्हें तप करना होगा। इस प्रकार दोनों ने 12 वर्ष तक कठोर तपस्या करके ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए संयमी जीवन व्यतीत किया और उसके फलस्वरूप उन्हें एक पुत्र रत्न प्रद्युम्न प्राप्त हुआ जो श्रीकृष्ण महाराज की ही प्रतिमूर्ति था।

उनका जीवन एक योगी का जीवन था। गीता के माध्यम से उन्होंने जो योग सम्बन्धित ज्ञान अर्जुन को युद्ध के मैदान में दिया वह भी उनका योगी होने का महान् प्रमाण है। आत्मा और परमात्मा का जो वर्णन उन्होंने गीता में

योगीराज श्री कृष्ण

किया है वह एक योगी ही कर सकता है। कितना सारगर्भित लिखा है कि- इस आत्मा को न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती है, न जल गला सकता है और न वायु सुखा सकता है। यह न कटने वाला, न जलने वाला, न गलने वाला और न सूखने वाला है। यह नित्य , स्थिर, अचल और सनातन है। आत्मोत्थान के लिए मानव को निरन्तर कार्य करना चाहिए। वह काम, क्रोध और लोभ तीनों को नरक का द्वार बताते हैं जो आत्मा का विकास रोक देते हैं। उन्होंने गीता में शारीरिक तप, वाणी के तप, और मन के तप का वर्णन भी किया है।

श्रीकृष्ण महाराज की तीव्र बुद्धि शारीरिक पराक्रम, गूढ नीति और यथायोग्य बर्ताव भी उनके योगी होने का प्रबल प्रमाण है। प्राणायाम के द्वारा जब व्यक्ति अपनी शक्ति का संग्रह करके किसी शत्रु पर प्रहार करता है तो वह बड़े से बड़े पहलवान को भी धराशायी कर देता है। कंस के चाणूर और मुष्टिक महाबली पहलवानों को पराजित करना और मौत के घाट उतारना श्री कृष्ण के महाबली होने का प्रमाण था। यह शक्ति ब्रह्मचर्य, योग और तप की है। उन्होंने जीवन में प्रत्येक कार्य बुद्धिपूर्वक किया है। आततायी कंस व जरासन्ध से लेकर जितने भी दुष्टों का नाश उन्होंने कराया है। उन सब में उनकी बुद्धि का ही चमत्कार दिखाई पड़ता है। संयमी और योगाभ्यासी ही ऐसी बुद्धि को प्राप्त कर सकता है।

श्रीकृष्ण महाराज एक महान् तपस्वी और योगी थे। उनको रसिक, गोपियों के साथ नाचने वाला, चोर आदि बताना उनके उज्ज्वल और पवित्र जीवन के साथ अन्याय है, उनकी तपस्या को कलंकित करना है। जिस रूप में आज श्रीकृष्ण महाराज की पूजा की जाती है, श्रीकृष्ण के नाम पर रासलीलाएं की जाती हैं, श्रीकृष्ण का वेश बनाकर लड़कियों के साथ नचाया जाता है, उन्हें चोरी करते हुए दिखाया जाता है वह अत्यन्त घृणित है। जिसने अपने प्रत्येक कार्य में आदर्शों को स्थापित किया है, प्रत्येक कार्य के द्वारा लोगों को कर्त्तव्य मार्ग पर चलने का संदेश दिया है उसके चरित्र का चोर, कामी, लम्पट के रूप में वर्णन करना उनके साथ अन्याय है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि-देखो श्रीकृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्ण जी ने जन्म से मरणपर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा।

(शेष पृष्ठ 6 पर)

आर्य आदर्शों के अद्वितीय प्रतीक श्रीकृष्ण

ले.-डॉ. भवानीलाल भारतीय

मनुष्य अपनी विविध प्रवृत्तियों को सर्वोच्च सोपान पर पहुंचाकर किस प्रकार एक साधारण व्यक्ति से महामानव एवं युगपुरुष के उच्च पद पर प्रतिष्ठित हो सकता है, इसका श्रेष्ठ उदाहरण श्री कृष्ण का जीवन है। कारागार की विवशतापूर्ण परिस्थितियों में जन्म लेकर भी कोई मनुष्य संसार का महानतम नेता बन सकता है, यह श्री कृष्ण का चरित्र देखने से स्वत: ही विदित हो जाता है। बंकिम के अनुसार श्रीकृष्ण ने अपनी ज्ञानार्जनी, कार्यकारिणी तथा लोकरंजनी तीनों प्रकार की प्रवृत्तियों को विकास की चरम सीमा तक पहुंचा दिया था, तभी उनके लिए यह सम्भव हो सका कि वे अपने समय के महान् राजनीतिज्ञ और समाज-व्यवस्थापक के गौरवान्वित पद पर आसीन हो सके।

बाल्यावस्था से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण पर्यन्त श्रीकृष्ण उन्नति के पथ पर अग्रसर होते रहे। धर्म के अनुसार लोगों को स्व-कर्तव्य-पालन-हेतु प्रेरित करना ही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य रहा। वे स्वयं धर्म में अनन्य निष्ठा रखने वाले और उसके वास्तविक रहस्य को जानकर उसका उपदेश देने वाले महान् धर्मोपदेष्टा थे। ऋषि दयानन्द ने तो यहां तक कह दिया था कि '**श्री कृष्ण ने जन्म से लेकर मरणपर्यन्त कुछ भी बुरा काम नहीं किया।**' यह सब कुछ धर्म पालन के कारण ही सम्भव हुआ। इसीलिए महाभारत को लिखना पड़ा :-

यतो धर्मस्तत: कृष्णो यत: कृष्णास्ततो जय:

''जहां कृष्ण हैं वहाँ धर्म है जहां धर्म है वहां जय है।'' संजय ने भी इसी प्रकार की बात ''गीता'' का उपसंहार करते हुए कही थी :-

यत्र योगेश्वर: कृष्ण यत्र पार्थो धनुर्धर:।

तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

''जहाँ योगेश्वर कृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन हैं वहीं श्री है, वहीं विजय है। अधिक क्या कहें, वहीं ऐश्वर्य और ध्रुवनीति है।'' ये उक्तियाँ श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार मानकर नहीं कही गई हैं। यदि ऐसा होता तो इनका कुछ भी मूल्य न होता। ये श्रीकृष्ण की सर्वोपरि मानवीय भावनाओं को ही प्रकाशित करती हैं, जिनके चरम परिष्कार के कारण श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य की कोटि से उठकर महापुरुषों की श्रेणी में आये, योगेश्वर और पुरुषोत्तम बने।

बाल्यकाल से ही देखिये। एक दृढ़ विचार वाले पुष्ट शरीर वाले और स्वस्थ मन तथा संकल्पनिष्ठ आत्मा वाले ब्रह्मचारी में जो-जो विशेषताएं होनी चाहिएं वे हमें श्रीकृष्ण में मिलती हैं। उनका शारीरिक बल अतुलनीय था। जिससे उन्होंने बाल्यकाल में ही अनेक त्रासदायक एवं हिंसक जन्तुओं का वध किया। समय आने पर उन्होंने युद्धकौशल और राजनीति का साँगोपाँग अध्ययन किया युद्ध-नीति के वे कितने प्रकाण्ड पंडित थे यह तो इसी से ज्ञात हो जाएगा कि अर्जुन और सात्यकि जैसे वीर उनके शिष्य थे जिनको उन्होंने युद्ध-विद्या सिखाई थी। गदा-युद्ध के वे अच्छे ज्ञाता थे। निर्भयता और चातुर्य के वे आगार थे।

शारीरिक बल के अतिरिक्त उनका शास्त्रीय ज्ञान भी बढ़ा-चढ़ा था। वे वेदों और वेदांगों के अनुपम ज्ञाता थे, यह भीष्म की उक्ति से सिद्ध हो चुका है। साथ ही वे संगीत, चिकित्सा-शास्त्र, अश्व-परिचर्या आदि नाना लौकिक विद्याओं के भी पंडित थे। उत्तरा के मृतप्राय बालक (परीक्षित) को जीवन प्रदान करना, तथा अर्जुन के सारथि बनाकर भयंकर युद्धक्षेत्र में अपने रथी की व रथ की रक्षा करना आदि उदाहरण इन बातों को सिद्ध करने के लिए उपस्थित किये जा सकते हैं। शारीरिक बल और मानसिक शक्तियों का चरम विकास तो उन्होंने किया ही था, आचार की दृष्टि से उनकी बराबरी कोई समकालीन पुरुष नहीं कर सकता था। वे महान् सदाचारी तथा शीलवान् थे। माता-पिता की आज्ञा का पालन करने तथा गुरुजनों के प्रति पूज्य भाव रखने की भावना को उन्होंने कभी विस्मृत नहीं किया। वे मादक द्रव्यों अथवा द्युत क्रीड़ा जैसे व्यंसनों से सदा दूर रहे, यहाँ तक उन्होंने समय-समय पर यादवों में ये आदेश प्रचारित किये थे कि यदि कोई व्यक्ति मदिरा पीता हुआ पाया जाएगा वह राज्य की ओर से दण्डनीय होगा। ब्रह्मचर्य और संयम की दृष्टि से कहा जा सकता है कि एक पत्नी-व्रत का दृढ़ता से पालन करते हुए भी उन्होंने सपत्नीक बारह वर्ष तक दृढ़ ब्रह्मचर्य धारण किया। तदनन्तर उनके प्रद्युम्न पुत्र हुआ जो रूप, गुण और सदाचार में सर्वथा अपने पिता के ही अनुरूप था। यह खेद की बात है कि पुराणकारों और कवियों ने श्रीकृष्ण के इस उज्जवल पहलू को सर्वथा विस्मृत कर दिया और उन्हें कामी, लम्पट, कुटिल तथा युद्ध-लिप्सु के रूप में चित्रित किया।

श्रीकृष्ण संन्ध्योपासना तथा अग्निहोत्र आदि दैनिक कर्तव्यों का पालन करने में भी कभी प्रमाद नहीं करते थे। ''महाभारत'' में स्थान-स्थान पर उनकी इस प्रकार की दिनचर्या के उल्लेख मिलते हैं। दुर्योधन से संधि वार्ता के लिए जाते हुए मार्ग में जब जब प्रात: सायं समय की उपस्थिति होती है श्री कृष्ण संध्या और अग्निहोत्र करना नहीं भूलते। ''महाभारत'' में लिखा है:-

प्रातरुत्थाय कृष्णास्तु कृतवान् सर्वमाह्निकम्।

ब्राह्मणैरभ्यनुज्ञात: प्रययौ नगरं प्रति।।

''प्रात: काल उठकर कृष्ण ने दैनिक (संध्याहवन आदि) सब क्रियायें कीं, पुन: ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर नगर की ओर प्रस्थान किया।''इसी प्रकार का एक अन्य उल्लेख है :-

कृत्वा पौर्वाह्निकं कृत्य स्नात: शुचिरलंकृत:।

उपतस्थे विवस्वन्तं पावकं च जनार्दन:।।

''फिर उन्होंने पवित्र वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो, संध्यावंदन, परमात्मा का उपस्थान एवं अग्निहोत्र आदि पूर्वाह्निक कृत्य सम्पन्न किए।''

अब इसे विडम्बना के अतिरिक्त और क्या कहा जाये कि नित्य संध्या-योग (ब्रह्मयज्ञ) के द्वारा सच्चिदानन्द परमात्मा की पूजा करने वाले देवयज्ञ-रूपी अग्निहोत्र के द्वारा देवताओं का पूजन करने वाले आर्योचित मर्यादाओं के पालक एवं रक्षक आदर्श महापुरुष श्री कृष्ण को साक्षात् ईश्वर कह दिया जाए।

कृष्ण-चरित्र की सर्वोपरि विशेषता उनकी राजनैतिक विलक्षणता और नीतिज्ञता है। राजनीति के प्रति उनका यह अनुराग किसी स्वार्थ भावना से प्रेरित नहीं था और न ही उनकी राजनैतिक विचारधारा किसी संकुचित राष्ट्रवाद के घेरे में आबद्ध थी। उस युग में तो आज जैसा राष्ट्रवाद जन्मा ही नहीं था। कृष्ण का राष्ट्रवाद तो लोक कल्याण, जन हित करने तथा सब प्रकार की अराजकता, अन्याय तथा शोषण की प्रवृत्ति को समाप्त कर धर्म राज्य की स्थापना के लक्ष्य को लेकर ही चला था। सम्पूर्ण मानव जाति ही नहीं अपितु प्राणिमात्र के कल्याण के भाव को लेकर ही उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश किया था।

सर्वप्रथम उनकी दृष्टि अपने जन्म स्थान मथुरा जनपद के स्वेच्छाचारी, एकतन्त्रात्मक शासन के प्रतिनिधि अत्याचारी शासक कंस के ऊपर गई। उन्होंने पारिवारिक और वैयक्तिक सम्बन्धों का विचार न करते हुए जनता के हित को सर्वोपरि समझा और कंस के विनाश में ही सबके कल्याण को देखा। कंस की मृत्यु के पश्चात् ही मथुरा वासियों को अपनी सर्वांगीण उन्नति करने का अवसर मिला। श्री कृष्ण का एक कार्य अभी पूरा ही नहीं हुआ था। जरासंध के आक्रमणों का सिलसिला आरम्भ हो गया। कंस के मारे जाने से जरासंध ने यह तो अनुमान लगा लिया था कि अब अधिक दिनों तक आर्यावर्त में अत्याचार, अनाचार तथा स्वेच्छाचार नहीं चल सकेगा, क्योंकि श्री कृष्ण के रूप में एक ऐसी शक्ति का उदय हो चुका है जो सदाचार, धार्मिकता, मर्यादा-पालन तथा जनहित को ही महत्त्व देती है।

कंस भी तो आखिर जरासंध का ही जमाता तथा उसी की नीतियों का अनुगामी था। कंस वध की घटना से जरासंध ने अपनी दुर्नीति तथा षड्यंत्र प्रवृत्ति की ही पराजय देखी। वह तुरन्त मथुरा पर चढ़

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

सर्वगुण सम्पन्न–योगीराज श्रीकृष्ण

प्रतिवर्ष भाद्रपद अष्टमी को योगीराज श्रीकृष्ण महाराज का जन्मदिवस मनाया जाता है। श्रीकृष्ण ने अपने सम्पूर्ण जीवन में धर्म के उत्थान के लिए कार्य किए। इसी भावना के अनुरूप उन्होंने गीता में कहा है कि–

परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

इन दो श्लोकों के माध्यम से श्रीकृष्ण ने यह बताने का प्रयास किया है कि उनका जीवन सदैव धर्म के प्रति समर्पित रहेगा। वे जब-जब संसार में आएंगे तब-तब धर्म के उत्थान के लिए ही कर्म करेंगे। कुछ स्वार्थी मतावलम्बियों ने इन श्लोकों के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि ईश्वर अवतार लेता है। श्रीकृष्ण ईश्वर के अवतार थे। वे हर युग में अवतार धारण करते हैं। इन श्लोकों के द्वारा कहीं पर भी अवतारवाद की पुष्टि नहीं होती। ऐसी मिथ्या बातों के कारण समाज में पाखण्ड और अन्धविश्वास फैलने लगा। परिणामस्वरूप लोगों ने श्रीकृष्ण के सच्चे स्वरूप को भुला दिया और उन्हें माखनचोर, रास रचाने वाला, गोपियों के वस्त्र चुराने वाला, राधा के साथ प्रेम प्रसंग चलाने वाला, कुब्जा दासी के साथ समागम करने वाला आदि रूपों में प्रसिद्ध कर दिया।

योगीराज श्रीकृष्ण एक ऐसे महापुरूष थे जिनमें सभी गुणों का समावेश था। एक महापुरूष के अन्दर जो गुण होने चाहिए वे सभी श्रीकृष्ण जी के जीवन में थे। श्रीकृष्ण का जीवन निःष्कलंक और निष्पाप था। महर्षि दयानन्द के अनुसार श्रीकृष्ण जी महाराज आदर्श गुणों का भण्ड़ार थे। उन्होंने सम्पूर्ण जीवन में ऐसा कोई भी कर्म नहीं किया जिससे उनका यश कलंकित हो। श्रीकृष्ण के जीवन का उद्देश्य था- परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्। वह एक गृहस्थी होते हुए भी एक महान् कर्मयोगी थे। श्रीकृष्ण के जीवन का एक-एक क्षण कर्म करते हुए व्यतीत हुआ। कर्म करने में उनका पूरा विश्वास था, फल की इच्छा में नहीं। उन्होंने अपने जीवन में जो भी कार्य किया परहित की भावना से किया। गोकुल में रहते हुए वह केवल अपने पालक नन्द के लिए ही नहीं बल्कि सभी गोकुल निवासियों के लिए कार्य करते रहे हैं। कंस को मारकर उन्होंने मथुरा का राज्य भी स्वयं नहीं लिया परन्तु परहित के लिए उन्होंने कंस की मृत्यु के बाद जरासन्ध द्वारा उत्पन्न की गई स्थिति को देखते हुए मथुरा को भी छोड़ दिया। जब पाण्ड़वों को खाण्ड़व वन दे दिया गया और वह यह विचार कर रहे थे कि वन को कैसे आबाद किया जाए तब श्रीकृष्ण ने उन्हें कर्म करने की प्रेरणा दी और उनकी प्रेरणा से पाण्ड़वों ने जंगल में मंगल कर दिया। जब युद्ध के समय दोनों सेनाएं आमने सामने खड़ी हो गई और अर्जुन, भीष्म, द्रोण आदि के साथ युद्ध करने से इन्कार कर देता है तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्म करने की प्रेरणा देते हुए अपने कर्त्तव्य का पालन करने की प्रेरणा दी।

श्रीकृष्ण धर्म के तत्त्व को जानते थे और प्रत्येक कर्म को ज्ञानपूर्वक करते थे और दूसरों को भी इसकी प्रेरणा देते थे। वह पाण्ड़वों का दूत बनकर दुर्योधन को समझाने का प्रयास करते है और जब दुर्योधन स्पष्ट कह देते हैं कि वह युद्ध के बिना सुई की नोंक के बराबर भी भूमि देने को तैयार नहीं है तब श्रीकृष्ण जी दुर्योधन को स्पष्ट कह देते हैं कि तुम्हारा यह कर्म राज्य को मिट्टी में मिला देगा। इसका परिणाम बहुत भयंकर होगा। तुम बुद्धिपूर्वक विचार करो,क्यों हस्तिनापुर को वीरान कराना चाहते हो।

श्रीकृष्ण का जीवन ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय है। वह महान् योद्धा, ज्ञानी और विद्वान् थे। तभी तो उन्होंने गीता के माध्यम से उपनिषदों का ज्ञान दिया। भगवान श्रीकृष्ण एक महान् योगी थे और उन्होंने गीता के माध्यम से इसका सन्देश जन-जन तक पहुंचाने का प्रयास किया। जहां उन्होंने कर्म, भक्ति, ज्ञान और धर्म के तत्त्वों को प्रचार और प्रसार किया वहां राजनीति के तत्त्वों का भी विवेचन किया। वह सारे भारत को एक सूत्र में बांधना चाहते थे। उस समय भी भारत में छोटे-छोटे राजा थे जो आपस में लड़ते रहते थे। उन्होंने शक्तिशाली पाण्ड़वों के माध्यम से सभी राजाओं को एक बार अपनी नीति के सूत्र में बांध दिया था। पाण्ड़वों के राजसूय यज्ञ को सफल बनाने वाले भी वही थे। जरासन्ध जैसे शक्तिशाली राजा को उन्होंने अपनी नीति के द्वारा ही मौत के घाट उतरवाया था। शिशुपाल जैसे अहंकारी राजा को उन्होंने बड़ी नीति से स्वयं ही समाप्त कर दिया था। वह युद्ध नहीं चाहते थे परन्तु दुर्योधन की राज्य प्राप्ति की लालसा ने उनके सारे किए कराए पर पानी फेर दिया। वह प्रसन्न थे कि पाण्ड़वों का राजसूय यज्ञ सफल हो गया और भारत एकसूत्र में बन्ध गया परन्तु उनको क्या पता था कि धृतराष्ट्र और दुर्योधन स्वार्थ में इतना अन्धे हो गए हैं कि वह सभी कुछ चौपट करके रख देंगे।

आखिर कौरवों और पाण्ड़वों को जब वह युद्ध करने के लिए खड़ा पाते हैं और यह समझते हैं कि पाण्ड़वों के साथ अन्याय हो रहा है वह तब अपनी नीति से ही अर्जुन के सारथि बन जाते हैं और निपुणता से भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कर्ण, जयद्रथ और दुर्योधन को भी मरवा देते हैं। महाभारत के सम्पूर्ण युद्ध में श्रीकृष्ण की नीति दिखाई देती है। कौरव पक्ष में इतने बड़े-बड़े योद्धा थे कि पाण्ड़व पक्ष में उनका मुकाबला करने के लिए अर्जुन के सिवाय कोई योद्धा उपस्थित नहीं था। दादा भीष्म पितामह, अर्जुन को धनुर्विद्या सिखाने वाले द्रोणाचार्य भी उनके सामने थे परन्तु श्रीकृष्ण ने अपनी नीति निपुणता के द्वारा इन सबको मौत के घाट उतार दिया। इस युद्ध में धर्म की विजय तो हुई परन्तु यह विजय बहुत मंहगी पड़ी। देश के बड़े-बड़े योद्धा महान् विद्वान् तपस्वी और ज्ञानी लोग भी इस युद्ध की आग से न बच सके। इस युद्ध ने भारत को बहुत पीछे धकेल दिया परन्तु इसके सिवा कोई रास्ता नहीं था।

11 अगस्त 2020 को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व आ रहा है। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित आर्य समाजें कोरोना महामारी को देखते हुए अपने-अपने घरों में लोगों को यज्ञ करने के लिए प्रेरित करें। जन्माष्टमी के पर्व पर श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र का स्वाध्याय करें। जन्माष्टमी पर्व मनाने का तात्पर्य है कि श्रीकृष्ण के आदर्श गुणों का चिन्तन हो। गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए जो कर्त्तव्य का मार्ग बताया है उस मार्ग पर चलने का प्रयास करें। अपने-अपने घरों में स्वाध्याय करते हुए बच्चों को श्रीकृष्ण के आदर्श जीवन की शिक्षाएं दें। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में समाज में जो भ्रांतियां फैली हुई हैं, उन्हें स्वाध्याय और चिन्तन के द्वारा दूर करें। इसलिए हम सब का कर्त्तव्य बनता है कि श्रीकृष्ण का जो जीवन महाभारत के नीतिवेत्ता के रूप में, आदर्श गुणी के रूप में, योगी और तपस्वी के रूप में वर्णित किया है उसी रूप में हम उनका गुणगान करें। इस महामारी के विकट काल में हमें स्वाध्याय करने का जो अवसर प्राप्त हुआ है, उसे व्यर्थ के कार्यों में बर्बाद न करें। वर्षा ऋतु का यह समय जो श्रावणी के रूप में प्रसिद्ध है इसमें स्वाध्याय और चिन्तन करें।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

सर्वकला सम्पन्न योगीराज श्री कृष्ण

ले.-कमल किशोर आर्य प्रधान, आर्य समाज वेद मन्दिर महर्षि दयानन्द बाज़ार, भार्गव नगर, जालन्धर

महाभारत के सूत्रधार श्री कृष्ण बुद्धिमान, प्रज्ञावान, ज्ञानी, पराक्रमी पुरुष, व्यवहार कुशल, सदा समताभाव में रहने वाले व्यक्तित्व थे। आज तक उन जैसा महापुरुष संसार में नहीं हुआ। वे गृहस्थी होने के साथ-साथ संयमी, योग निपुण, योगेश्वर, सत्यनिष्ठ, व कुशल नीतिवान भी थे। ऐसे महापुरुष श्री कृष्ण के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द जी ने अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि ''श्री कृष्ण का जीवन आप्त महापुरुषों की तरह है। देखो श्री कृष्ण का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण कर्म-स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्ण ने जन्म से लेकर मरण पर्यन्त बुरा काम किया हो ऐसा कुछ भी नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। जिसको पढ़ सुन कर अन्य मत वाले श्री कृष्ण जी की बहुत सी निन्दा करते हैं। जो भागवत न होता तो श्री कृष्ण जी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती।''

वास्तव में पुराणकारों ने जिस रूप में श्री कृष्ण का चित्रण किया है और जो विकृत रूप आज घर घर में प्रचलित है और जिस की पुराणकार कथायें सुना सुना कर श्री कृष्ण को अपमानित कर रहे हैं, वह तो इस महापुरुष के साथ न्याय न होकर सरासर अन्याय है। जिस कृष्ण ने बारह वर्ष रुक्मणी के साथ हिमालय बदरीनाथ में ब्रहाचर्य पूर्वक तप किया व प्रद्युम्न जैसे पुत्र को प्राप्त किया उस कृष्ण को भागवत कथाकार ने कामी, माखनचोर, लम्पट, स्त्रीगामी व रासलीला रचाने वाला कह कर अपमानित ही तो किया है। अत: अत्यंत दुखी हो कर महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को भी इतना कठोर वचन कहना पड़ा कि ''भागवत बनाने वाले अच्छा होता अगर तू माँ के गर्भ में ही मर गया होता।''

श्री कृष्ण के जीवन का उद्देश्य हमेशा ''परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दृष्कृताम धर्म संस्थापनार्थाय'' अर्थात् धर्म की स्थापना करना व दुष्टों का संहार करना रहा। धर्म की स्थापना हेतु सर्वप्रथम अपने मामा दुष्ट कँस का मथुरा में जाकर उसी के घर में वध किया और सौ राजाओं की बलि देने का प्रण किये बैठे जरासंध को भी अपनी बुद्धिमता से भीम के हाथों मरवा दिया। शिशुपाल जैसे दुराग्राही व्यक्ति जो उन्हें गालियाँ ही देता रहा परन्तु कृष्ण ने कहा मैं तुझे सौ गाली तक कुछ नहीं कहूँगा। परन्तु शिशुपाल गाली देने से बाज नहीं आया। जब गाली सौ पार कर गई तो कृष्ण ने अपना सुदर्शन उठा लिया और शिशुपाल का वध करने से भी संकोच नहीं किया।

श्री कृष्ण खँड-खँड भारत को अखँड रूप में देखना चाह रहे थे। इसलिये उन्होंने क्षत्रियों का मार्ग चुना व प्रण लिया कि मैं धरती पर धर्म का एक छत्र राज्य स्थापित करूंगा। जहां राजा भी धार्मिक होगा तो सारी प्रजा भी धार्मिक होगी। वह महाभारत राज्य की स्थापना करना चाहते थे। यदि वह स्वयं राज्य करना चाहते तो कँस के वध के पश्चात मथुरा पर अधिकार कर सकते थे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। मथुरा छोड़कर उज्जैनी पहुँच कर आचार्य सान्दीपनि की कुटिया में पहले विद्या का राज्य प्राप्त किया तथा साथ ही चरित्र का राज्य भी प्राप्त किया। श्री कृष्ण सच्चे प्रभु भगत थे। वह किसी ऐहिक कामना से नहीं केवल सर्वभूत हित कामना से प्रेरित थे। युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया तो अर्घ्यदान का अधिकारी भी उन्हें ही बनाया गया। उसमें ब्राह्मणों के चरण धुलाने का काम भी स्वयं अपने हाथों से किया। परन्तु इतने बड़े सम्मान को प्राप्त करने पर भी अहंकार का लेश मात्र भी इन्हें छू नहीं पाया। जुए में दुष्टतापूर्ण ढंग से दुर्योधन व उसके साथियों द्वारा युधिष्ठिर का सारा राज्य छीन लिया गया। द्रोपदी का चीर हरण किया गया। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म पितामह जैसे बड़े बड़े विद्वान उस सभा में बैठे थे पर इस अन्याय के विरुद्ध किसी ने कुछ नहीं कहा। महाभारत के वनपर्व के सोलहवें अध्याय में कृष्ण के कथन को स्पष्ट किया है कि ''युधिष्ठिर जब तुम जुआ खेल रहे थे तो उस समय मैं किसी युद्ध में गया हुआ था नहीं तो बिना बुलाये पहुँच कर धृतराष्ट्र को समझाता और न मानता तो ''निगृहीयाम बलमेतनम्'' उससे बल पूर्वक अपनी बात मनवाता और उसके दुष्ट सलाहकारों को प्राण दण्ड देता। पर वह समय तो हाथ से निकल गया।''

कृष्ण चाहते थे कि युद्ध न हो। वह यह जानते हुए कि दुर्योधन बड़े हठ्ठी स्वभाव का है। ऊपर से शकुनि, दु:शासन और कर्ण जैसे लोग उसके साथी हैं, जो उसे कभी भी सीधे रास्ते पर नहीं आने देंगे, सन्धि प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर जाने को तैयार हुये तो द्रोपदी ने आकर पूछा कि ''हे कृष्ण क्या तुम सुबह दुर्योधन के पास हस्तिनापुर शान्ति सन्धि प्रस्ताव लेकर जा रहे हो? तो कृष्ण ने उत्तर दिया कि हाँ मैं इसी प्रयोजन से हस्तिनापुर जा रहा हूँ तो द्रोपदी ने भावुक होकर कहा कि तुम मेरे खुले हुये केशों को देख रहे हो क्या? मैंने प्रण ले रखा है कि जिन लोगों ने भरी सभा के अन्दर मेरा अपमान किया है। जब तक उनके खून से अपने बालों को धो नहीं लेती तब तक मैं अपने केस नहीं बांधूगी। ऐसे में यदि तुम सन्धि प्रस्ताव लेकर जा रहे हो तो फिर मेरी प्रतिज्ञा का क्या होगा? तो कृष्ण ने द्रोपदी को समझाया ''हे कृष्णे, मैं जो सन्धि प्रस्ताव लेकर जा रहा हूँ इसको दुर्योधन मानने वाला नहीं है। मैं महाभारत के युद्ध को साक्षात अवश्यंभावी देख रहा हूं। परन्तु मैं फिर भी दुर्योधन को समझाने का एक आखरी प्रयास करना चाहता हूँ। ताकि कोई कल को यह न कहे कि समर्थ होते हुए भी कृष्ण ने युद्ध को रोकने का प्रयास नहीं किया। परन्तु दुर्योधन कुत्सित इरादों का व्यक्ति था। उसने श्री कृष्ण के आगमन पर कई प्रकार के भोग बनवा रखे थे और कई कीमती हीरे-जवाहरात भेंट में देकर कृष्ण को अपने पक्ष में करने की योजना बना रखी थी। परन्तु कृष्ण उसके झांसे में आने वाले नहीं थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में दुर्योधन को यह कह दिया कि मैं भोजन केवल दो जगह पर ही करता हूं। पहला जहाँ प्रेम होता है तथा दूसरा जहां बहुत भूख लगी हो। और जहां प्राण संकट में हों तो मांग कर भी खा लेता हूँ। परन्तु मुझे अभी न तो भूख ही लगी है, न ही मेरे प्राण संकट में है और न ही यह मेरे प्रेमी का घर है। तुम तो मुझे खुशामदखोरी करके खिला रहे हो। इसलिये मुझे तुम्हारे भोजन की आवश्यकता नहीं है। मैं दूत बनकर संधी प्रस्ताव लेकर आया हूँ किन्तु सारा राज्य न सही केवल पांच गांव ही पांडवों को दे दो वो इसी में अपना निर्वाह कर लेंगे। यदि तुम इसको मानते हो तो इसी में सब की भलाई है। दुर्योधन ने गुस्से में लाल पीले होकर कहा कि तुम पांच गांवों की बात करते हो मैं तो पांडवों को सुई की नौक के बराबर भी भूमि नहीं दूंगा। तब कृष्ण ने कहा तब तो युद्ध अवश्यंभावी है। उसे कोई टाल नहीं सकता। यह कहते हुए कृष्ण विदुर का हाथ पकड़ कर सभा भवन से बाहर हो गये तथा उस समय के सबसे निम्न स्तर के समझे जाने वाले विदुर के घर आकर भोजन किया।

सारा भारत दो भागों में विभक्त हो गया। 11 अक्षैहिणी सेना कौरवों की तरफ थी और 7 अक्षैहिणी सेना पांडवों की ओर थी। कुरूक्षेत्र के मैदान में दोनों सेनायें आमने सामने खड़ी थी। युद्ध आरम्भ होने वाला था। कृष्ण अर्जुन के सारथी थे। अर्जुन ने श्री कृष्ण से कहा कि मरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच ले चलो। एकाएक क्या हुआ? अर्जुन जिस के कन्धों पर युद्ध जीतने का भार सौंपा गया था वो युद्ध में अपने सामने अपने ही बन्धु बान्धवों व रिश्तेदारों, गुरू, आचार्य को देख कर मन में वैराग्य भाव धारण कर युद्ध न करने की बातें कर अस्त्र शस्त्र न उठाने की बातें करने लगा।

तब कृष्ण ने उसे समझाया ''हे अर्जुन जिनको तू न मारने की बातें कर रहा है, उनकी आत्मा तो पहले ही मर चुकी है। दुर्योधन का नमक खा कर उनकी बुद्धि तो पहले ही भ्रष्ट हो चुकी है। इसलिये वह तो पहले ही मरे हुए हैं। तुम्हें तो केवल मृत्यु का निमित मात्र ही बनना है। तुम्हारा कर्त्तव्य केवल कर्म करना है। फल तेरे वश में नहीं है। तू उस की चिन्ता न कर। इस प्रकार गीता का अमर सन्देश देकर मृत प्राय: अर्जुन में पुन: प्राणों का संचार कर युद्ध के लिये तैयार करते हैं।

महाभारत की लड़ाई में कृष्ण की बुद्धिमता व नीतिमता पग पग पर दिखाई देती है। भीष्म पितामह से ले कर दुर्योधन तक सब का संहार श्री कृष्ण ने ही अपनी बुद्धिमता से कराया। भीष्म पितामह ने सारा दिन पांडव सेना पर कहर बरपाया तो सायंकाल को पांडवों को साथ लेकर भीष्म के पास चले गये।

(शेष पृष्ठ 5 पर)

पुण्य के आवरण में पाखण्ड : गीता की सामाजिक दृष्टि

ले.-डॉ. जितेन्द्र कुमार सह-आचार्य, संस्कृत विभाग राजकीय महाविद्यालय बयाना, भरतपुर (राज.)

(गतांक से आगे)

अब तीन प्रकार का तप कहा जाता है।

देव, ब्राह्मण, गुरु और बुद्धिमान-ज्ञानी-इन सबका पूजन, शौच-पवित्रता, आर्जव-सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह सब शरीर सम्बन्धी-शरीर द्वारा किये जाने वाले तप कहे जाते हैं, अर्थात् शरीर जिनमें प्रधान है, ऐसे समस्त कार्य और कारणों से जो कर्त्ता द्वारा किये जायें, वे शरीर सम्बन्धी तप कहलाते हैं। आगे यह कहेगें भी कि 'उन सब कर्मों के ये पाँच कारण हैं' इत्यादि। यह वाक्य गीता के (18.14-15) श्लोक के सम्बन्ध में कहा गया है। इसलिये यहाँ पर इसका लेख नहीं किया जा रहा है। वहीं पर इसका विवेचन करना उचित होगा।

जो वचन किसी प्राणी के अन्त: करण में उद्वेग= दु:ख उत्पन्न करने वाले नहीं है, तथा जो सत्य, प्रिय और हितकारक हैं अर्थात् इस लोक और परलोक में सर्वत्र हित करने वाले हैं, यहाँ 'उद्वेग न करने वाले' इत्यादि लक्षणों से वाक्य को विशेषित किया गया है तथा 'च' शब्द सब लक्षणों का समुच्चय बतलाने के लिये है। अत: समझना चाहिये कि दूसरे को किसी बात का बोध कराने के लिये कहे गये वाक्य में यदि सत्यता, प्रियता, हितकारिता और अनुद्विग्नता-इन सबका अथवा इनमें से किसी एक, दो या तीन का अभाव हो तो वह वाणी सम्बन्धी तप नहीं है।

जैसे सत्य वाक्य यदि अन्य एक, दो या तीन गुणों से हीन हो तो वह वाणी का तप नहीं है, वैसे ही प्रिय वचन भी यदि अन्य एक, दो या तीन गुणों से हीन हो तो यह वाणी सम्बन्धी तप नहीं है, तब फिर वह वाणी का तप कौन सा है? इसका उत्तर देते हुए आद्य शंकराचार्य लिखते हैं-

जो वचन सत्य हो और उद्वेग करने वाला न हो तथा प्रिय और हितकर भी हो, वह वाणी सम्बन्धी परम तप है। जैसे हे वत्स! तू शान्त हो, स्वाध्याय और योग में स्थित हो, इससे तेरा कल्याण होगा इत्यादि वचन हैं तथा यथाविधि स्वाध्याय का अभ्यास करना भी वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मन का प्रसाद अर्थात् मन की परम शान्ति-स्वच्छता सम्पादन कर लेना, सौम्यता-जिसको सुमनसता कहते हैं वह मुखादि को प्रसन्न करने वाली अन्त:करण की शुद्धवृत्ति, मौन-अन्त:करण का संयम, क्योंकि वाणी का संयम भी मन: संयमपूर्वक होता है। अत: कार्य से कारण कहा जाता है, मन का निरोध अर्थात् सब ओर से साधारण भाव से मन का निग्रह तथा अच्छे प्रकार से भाव की शुद्धि अर्थात् दूसरों के साथ व्यवहार करने में छल-कपट से रहित होना यह मानसिक तप कहलाता है। केवल वाणी विषयक मन के संयम का नाम मौन है और सामान्य रूप से संयम करने का नाम आत्म-निग्रह है, यह भेद है मौन और आत्मनिग्रह में।

उपर्युक्त कायिक, वाचिक और मानसिक तप मनुष्यों द्वारा किये जाने पर, सात्त्विकादि भेदों से तीन प्रकार के कैसे होते हैं, वह बतलाते हैं-

जिसका प्रकरण चल रहा है वह, तीन प्रकार का कायिक, वाचिक और मानसिक तप, जो फलाकांक्षा से रहित और समाहितचित्त पुरुषों द्वारा उत्तम श्रद्धा पूर्वक-आस्तिक्य बुद्धि पूर्वक किया जाता है, ऐसे उस तप को श्रेष्ठ पुरुष सात्त्विक-सत्त्वगुणजनित कहते हैं।

जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिये किया जाता है-यह बड़ा श्रेष्ठ पुरुष है, तपस्वी है, ब्राह्मण है। इस प्रकार की बड़ाई की जाती है, उसका नाम सत्कार है। (आते देखकर) खड़े हो जाना तथा प्रणाम आदि करना-ऐसे सम्मान का नाम मान है। पैर धोना, अर्चन करना, भोजन कराना इत्यादि का नाम पूजा है। इन सबके लिये जो तप किया जाता है और जो दम्भ से किया जाता है, वह तप यहाँ राजसी कहा गया है। तथा अनिश्चित फल वाला होने से नाशवान् और अनित्य भी कहा गया है।

जो तप अपने शरीर को पीड़ा पहुँचाकर या दूसरे का बुरा करने के लिये मूढ़ता पूर्वक आग्रह से अर्थात् अज्ञान पूर्वक निश्चय से किया जाता है, वह तामसी तप कहा गया है।

यज्ञ और तप को बताने के पश्चात् अब दान के भेद का निरूपण करते हैं-जो दान 'देना ही उचित है' मन में ऐसा विचार करके अनुपकारी को, जो कि प्रत्युपकार करने में समर्थ न हो, यदि समर्थ हो तो भी जिससे प्रत्युपकार चाहा न गया हो, ऐसे अधिकारी को दिया जाता है तथा जो कुरूक्षेत्र आदि पुण्य भूमि में, संक्रान्ति आदि पुण्यकाल में और छ: अंगों के सहित वेद को जानने वाले ब्राह्मण आदि श्रेष्ठ पात्र को दिया जाता है, वह दान 'सात्त्विक' कहा जाता है।

जो दान प्रत्युपकार के लिये अर्थात् कालान्तर में यह मेरा प्रत्युपकार करेगा, इस अभिप्राय से अथवा इस दान से मुझे परलोक में फल मिलेगा, ऐसे उद्देश्य से क्लेश-खेदपूर्वक दिया जाता है, वह 'राजस' दान कहा गया है।

जो दान अयोग्य देश-काल में अर्थात् अशुद्ध वस्तुओं और म्लेच्छादि से युक्त पापमय देश में, तथा पुण्य के हेतु बतलाये हुए संक्रान्ति आदि विशेषता से रहित काल में और मूर्ख, चोर आदि अपात्रों को दिया जाता है तथा जो अच्छे देश काल आदि में भी बिना सत्कार किये-प्रिय वचन, पाद प्रक्षालन और पूजादि सम्मान से रहित तथा पात्र का अपमान करते हुए दिया जाता है, वह 'तामस' दान कहा गया है।

यज्ञ, दान और तप आदि को सद्गुणसम्पन्न बनाने के लिये यह उपदेश दिया जाता है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ 5 का शेष-सर्वकला सम्पन्न योगीराज श्री कृष्ण

अर्जुन ने चरण स्पर्श किये तो स्वभाव अनुसार भीष्म ने विजयी भव का आशीर्वाद दे डाला। पर कृष्ण ने पलट कर कहा कि आपका आशीर्वाद कैसे फलीभूत हो सकता है क्योंकि जैसे कई दिनों से आप लड़ रहे हैं तो यदि एक दिन और लड़ते रहे तो पांडव सेना का सर्वनाश हो जायेगा। इस पर भीष्म ने कहा कि मैं क्षत्रिय हूँ। जब कोई क्षत्रिय मुझ से लड़ने आयेगा तो मैं अवश्य ही लड़ूँगा। परन्तु मैं किसी नपुंसक पर वार नहीं करता। श्री कृष्ण ने इशारा समझ लिया और अगले ही दिन शिखण्डी जो नपुंसक था उसको पांडव सेना का सेनापति बनाकर भीष्म पितामह के सामने खड़ा कर दिया। शिखण्डी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने अपने शस्त्र डाल दिये। कृष्ण ने अर्जुन और शिखण्डी को संकेत किया कि यही सही समय है, तीर चलाओ। तीरों के प्रहार न झेलते हुए, भीष्म पितामह शर शैय्या पर लेट गये। यह सब कुछ कृष्ण की ही नीति का परिणाम था।

महाभारत का युद्ध समाप्त हो गया। खून की नदियां बह निकली। राजकुल तबाह हो गये। पांडव विजयी हुए। कौरव वंश का सफाया हो गया। श्री कृष्ण पांडवों को लेकर गान्धारी से मिलने गये। गान्धारी के मन में श्री कृष्ण के प्रति इतना कोप था, पुत्र शोक था, तप तेज था कि उसकी आँखों की पट्टी बन्धे हुए होने के बावजूद जब उसने युधिष्ठिर की ओर देखा तो युधिष्ठिर का रंग भी भय के कारण काला पड़ गया। पर गान्धारी का कोप तो कृष्ण पर था। वह अपना कोप व तप तेज कृष्ण पर बरसाना चाहती थी। गान्धारी ने श्री कृष्ण को खूब खरी खोटी सुनाई कि तुमने मेरे वंश का सत्यानाश किया है। मैं तुम्हें शाप देती हूं कि जैसे तुमने मेरे वंश का नाश कराया है वैसे ही तेरे यदुवंशियों का नाश हो।

श्री कृष्ण ऐसे कटु वचन सुन कर भी द्रष्टा, साक्षी शुद्ध स्वभाव में बने रहे। कृष्ण योगेश्वर थे। भविष्य द्रष्टा भी थे। उन्हें पता था कि भविष्य में ऐसा ही होने वाला है। सरल स्वभाव से गान्धारी को कहते हैं कि जो तू कह रही है, वह तो पहले से ही निश्चित है। तुम व्यर्थ में शोक मत करो। यह जीवन नश्वर है इसलिये तुम ईश्वर की भक्ति में मग्न होकर शान्ति प्राप्त करो। इतनी कोप भरी बातें सुन कर भी कृष्ण कभी उतेजित नहीं हुए। महाभारत का युद्ध उनकी समता का उदाहरण है।

सिंहासन से उठकर नंगे पांव दौड़ कर सुदामा का स्वागत करना उनका मित्र प्रेम, व उनका गरीबों के प्रति प्रेम का अंदाजा लगाया जा सकता है।

वास्तव में कृष्ण गुणों की खान थे। ऐसे श्री कृष्ण को शत-शत नमन्। हमारे अन्दर भी इन दिव्य गुणों को धारण करने की जिज्ञासा उभर आये। इस नश्वर शरीर को तो कई बार खोया व पाया, एक बार शाश्वत को पाने की जिज्ञासा जाग जाये।

श्रीकृष्ण जी और आर्यसमाज

ले.-प्रा. भद्रसेन दर्शनाचार्य शालीमार बाग-होशियापुर

यह एक स्वाभाविक बात है, कि प्रत्येक वर्ग अपने पूज्यों, आदर्श व्यक्तियों, महापुरुषों, अवतारों, पैगम्बरों का मान-सम्मान करता है। प्रत्येक वर्ग के विविध क्षेत्रों में विशेष कार्य करने वाले महान व्यक्ति होते हैं। अत: वे-वे या उस वर्ग के व्यक्ति अपनों को गौरव व देने के लिए अपने पूज्यों की जन्मतिथि, पुण्य तिथि या विशेष ऐतिहासिक दिवस पर कोई न कोई या किसी प्रकार का पर्व, त्योहार, उत्सव आयोजित करते हैं। उस-उस से सम्बन्ध रखने वाले भक्त, प्रेमीजन तब उत्साहपूर्वक श्रद्धा-आस्था भरा आयोजन करते हैं। जिस का मुख्य उद्देश्य यही होता है, कि इस से जहां वे अपना श्रद्धाभाव प्रकट करते हैं, वहां वे अपनों का यशकीर्ति भी बढ़ाते हैं। जिस से प्रत्येक प्रेरणा प्राप्त करे।

तालमेल

ऐसे अवसर पर आर्यसमाज श्री कृष्ण जी के भक्तों से सानुरोध प्रार्थना करता है, कि वे स्वयं ही सोचें क्या हम इस समय ऐसे नामों, गीतों, विशेषणों, घटनाओं को सामने लाते हैं? जिन से अपनों को आदर देने की भावना, मन से मान-सम्मान करने की मांग के साथ कितना तालमेल बैठता है? श्री कृष्ण जी के प्रति अभिव्यक्त की जाने वाली हर बात कितनी गौरव-गरिमा बढ़ाती है। हमारी आपस की चर्चाओं में कई ऐसी उक्तियां चलती हैं। जिन के बारे में श्री कृष्ण जी के भक्तों को अवश्य ही सोचना चाहिए। ऐसे ही भक्तिकाल के अष्टछाप के कवियों के वचन और पुराणों की अनेक कहानियां विचार्यकोटि में आती हैं। तभी तो महर्षि दयानन्द ने अपने अमरग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में दर्दे दिल के साथ लिखा है। इस उद्धरण का एक-एक शब्द ध्यानपूर्वक पढ़ने योग्य है और बहुत ही अधिक विचारणीय भी है।

इस सन्दर्भ में दो बातें विशेष रूप से कही गई हैं। 1. महाभारत में श्री कृष्ण जी का जीवन आप्त सदृश है। महाभारत एक भारतवर्ष का ऐतिहासिक महाकाव्य है।

अत: इतिहास की दृष्टि से मान्य ग्रन्थ है।

महर्षि यहां आप्त पुरुष कह रहे हैं। इसलिए उन के विचार से श्री कृष्ण जी पूज्य, महापुरुष, आदर्श व्यक्ति, आदरणीय महा मानव हैं।

आप्त शब्द विशेष विवेचनीय है।

आप्त का शाब्दिक अर्थ है-प्राप्त अर्थात् जिस ने सामाजिक-वैयक्तिक लक्ष्य/उद्देश्य स्थिति को प्राप्त कर लिया है। सामान्य शब्दों में इस को पहुंचा हुआ कहा जाता है। अत: वह सदा-सर्वथा मान्य, प्रामाणिक-जिस पर दोष-आपत्ति भरी अगुंली न उठाई जा सके।

दूसरी बात इस उद्धरण में यह है, भागवत जैसे पुराणों ने श्री कृष्ण जी पर जो दोष लगाये हैं। वे मिथ्या झूठे हैं। ऐसा करना किसी भी प्रकार से उचित, उपयोगी लाभप्रद नहीं है।

अत: महर्षि बड़े भरे दिल से लिखते हैं, कि ऐसे दोष लगाने वाले संसार में न होते, तो कितना अच्छा रहता।

आजकल कृष्णभक्तों में भागवत पुराण की ही कथायें अधिक होती हैं। यह कितने आश्चर्य की बात है।

महाभारत काल में भीष्म जी सब से बड़े थे। इसलिए उन को पितामह कहा जाता है। उन्होंने ही राजसूय यज्ञ में अग्रज पूजा का अधिकारी श्रीकृष्ण जी को बताया था।

श्रीकृष्ण और बलराम ने गुरु सन्दीपनि के यहां शिक्षा प्राप्त की। उस काल में सुदामा जैसे अनेक सहपाठी थे। शिक्षित होकर अपनी योग्यता और कार्यकुशलता से जनता की सेवा मार्गदर्शन किया। जैसे कि सारा दूध-मक्खन बेचने से पौष्टिकता का अभाव, बल की हानि। जनता में दोनों भाईयों का आदर बढ़ता देखा। कंस ने उनको रास्ते से हटाने के प्रयास शुरु किये। इसी क्रम में दोनों भाईयों को कुश्ती के अखाड़े का खुला आमन्त्रण दिया। वहां कंस के पहलवानों ने कुश्ती के बहाने मारने का यत्न किया। तब दोनों भाईयों ने चाणूक और मुष्टि पहलवानों को ठिकाने लगाया। फिर मौका देखकर कंस को भी परलोक पहुंचा दिया। कंस के स्थान पर कंस के पिता को राजा बना कर राजगद्दी पर बिठा दिया।

कंस के ससुर ने बदला लेने के लिए मथुरा पर आक्रमण आरम्भ कर दिये। पहले तो कई बार मुंहतोड़ उत्तर दिया। फिर शत्रु के बहुत बड़े होने और सेना का विचार कर स्वयं मथुरा को छोड़ दिया। जिस से कृष्ण से बदला लेने के कारण मथुरा की जनता पर आक्रमण न हों।

श्री कृष्ण जी ने समुद्र के किनारे द्वारिका नाम से नया राज्य बसा दिया। इस प्रकार सुशासन करने के नए नए उदाहरण रखे।

कौरव-पाण्डव भाईयों में जब लड़ाई बहुत बढ़ी। तो शान्तिदूत बने। दुर्योधन ने अपना हठ जब न छोड़ा, तो महाभारत के युद्ध में केवल अर्जुन के सारथी ही न बनें। अपितु पाण्डव दल के नेता बन भीष्मवध, जयद्रथ संग्राम, द्रोण वध और दुर्योधन के गदा युद्ध में अपनी नीति से जीत कराई।

अग्रज पूजा के समय सब से वयोवृद्ध भीष्म पितामह ने कहा था-श्री कृष्ण जी ही वेद-वेदांग की विद्वता और युद्ध विद्या में सब से अधिक निष्णात हैं। अत: वे ही इस पूजा के योग्य हैं।

इस सब के कारण श्री कृष्ण जी को सोलह कला सम्पन्न माना जाता है।

सारांश

आर्य समाज सभी श्री कृष्ण जी के भक्तों को साग्रह सन्देश/सुझाव देता है, कि अपने आदरणीयों के प्रति कृतज्ञता। किसी के किए गए अच्छे कार्य को सदा स्वीकार करने की भावना यह आशा करती है, कि अपने पूज्यों का हमेशा हर तरह से आदर-सत्कार के रूप में ही सब कुछ किया जाए। इस के साथ मान-सम्मान देने की कर्तव्यता भी यही चाहती है, कि हम किसी भी रूप में ऐसा कुछ भी न करें, जिससे उन का निरादर, अपमान प्रकट हो। अपने महापुरुषों/पूर्वजों। बड़ों के पर्व, त्योहार, उत्सव प्रेरणा, उत्साह प्राप्ति के लिए ही हम आयोजित करते हैं। अत: हमारा प्रत्येक क्रिया-कलाप ऐसा ही हो, जिस से श्री कृष्ण जी के प्रति श्रद्धा-आस्था भरा व्यवहार सामने आए। इसलिए अपने पूज्यों के नाम, विशेषण, उन का किसी से किसी प्रकार का सम्बन्ध, जीवन की घटनायें उनको गौरवगरिमा बढ़ने वाली ही होनी चाहिये।

पृष्ठ 1 का शेष-निष्काम कर्मयोगी...

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में योगीराज श्रीकृष्ण महाराज का कितना मान था यह उनके विचारों से जाना जा सकता है। श्रीकृष्ण के इस उज्जवल और पवित्र जीवन की धवल कीर्ति को चारों ओर फैलाएं यह हमारा भी कर्त्तव्य हो जाता है। आज समाज के सामने उनके उज्जवल जीवन का वर्णन करने की आवश्यकता है। श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियां और मत लोगों में फैले हैं उन्हें तभी दूर किया जा सकता है यदि उनका निष्कलंक जीवन लोगों के सामने आ जाए। पुराणों में लिखी गलत बातों को लेकर जो अपमान इस महापुरूष का किया जाता है उसका निराकरण करें। उनका प्रमाणिक जीवन लोगों के सामने प्रस्तुत करना चाहिए। जितना इस महापुरूष के जीवन को कलंकित किया गया है उतना किसी का भी नहीं हुआ है।

आर्य बन्धुओं प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष कोरोना महामारी के कारण श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पर्व धूमधाम से मनाना सम्भव नहीं है। इसलिए इस दिन सभी अपने-अपने घरों में यज्ञ करें और योगीराज श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र का स्वाध्याय करें। जन्माष्टमी के इस पवित्र पर्व पर सर्वगुणसम्पन्न महामानव का सच्चा चरित्र और स्वरूप सर्वसाधारण तक पहुंचाने का व्रत लें। उनके उज्जवल और निष्पाप जीवन का चिन्तन स्वयं भी करें और दूसरों को भी प्रेरणा दें। उन्होंने जो असाधारण कार्य अपनी योगबुद्धि के द्वारा किए हैं, महाभारत में जो अपना आदर्श जीवन प्रस्तुत किया है, गीता के रूप में संसार को जो अलौकिक ज्ञान दिया है, अर्जुन को जो कर्त्तव्य पालन करने का पाठ पढाया है उन कार्यों से आने वाली पीढ़ियों को अवगत कराएं।

पृष्ठ 2 का शेष-आर्य आदर्शों के अद्वितीय प्रतीक श्रीकृष्ण

दौड़ा और एक बार नहीं, सत्रह बार आक्रमण किये। कृष्ण के अपूर्व रणचातुर्य तथा उनके सफल नेतृत्व में यादवों ने जरासन्ध की सेना के दाँत खट्टे कर दिये, परन्तु जब श्री कृष्ण ने ही यह समझ लिया कि शूरसेन प्रदेश सुरक्षा की दृष्टि से उत्तम नहीं है तो उन्होंने यादव जाति के निवास के लिये द्वारिका जैसे भौगोलिक दृष्टि से सुदृढ़ आवास स्थान को ढूंढ निकाला और उसे ही यादवों की राजधानी बनाया। और जरासंध के सेनापति शिशुपाल ने प्रथम तो रुक्मिणी के विवाह के अवसर पर पुनः युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के प्रसंग में कृष्ण को प्रथम अर्घ्य देने के प्रस्ताव को लेकर विवाद खड़ा किया तथा यज्ञ ध्वंस करके कृष्ण के धर्मराज संस्थापन के महज लक्ष्य की पूर्ति में बाधक बना। उस समय कृष्ण ने ही शिशुपाल का वध किया और इस प्रकार ''विनाशाय च दुष्कृताम्'' से संकेतित दुष्टजनों के विनाश रूपी महायज्ञ में एक ओर आहुति प्रदान की। जरासन्ध को समाप्त करने का अवसर तो इससे पूर्व ही उपस्थित हो गया था। 86 राजाओं को कैद कर तथा इन अभागे राजाओं की संख्या 100 हो जाने पर उनकी बलि कर देने का जो पैशाचिक विचार जरासन्ध ने कर रखा था उसे सहन करना श्री कृष्ण जैसे धर्मात्मा एवं करुणाशील पुरुष के लिए असम्भव ही था। इस दुष्कृत्य को पूरा करने का विचार रखने के कारण जरासन्ध अपने अत्याचारों की चरम सीमा तक पहुंच चुका था और अब उसे अधिक सहन करना सम्भव नहीं था। मनुष्य जाति का ऐसा शत्रु जरासन्ध भी श्री कृष्ण की नीतिमत्ता तथा भीम के शौर्य से मारा गया। उसमें न तो युद्ध ही हुआ और न अनावश्यक रक्तपात।

''महाभारत'' के युद्ध में भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, दुर्योधन आदि कौरव पक्ष के सभी महारथी वीरों का एक-एक कर अन्त हुआ और इस प्रकार युधिष्ठिर के धर्मराज्य संस्थापन रूपी महायज्ञ की पूर्णाहुति हुई। इस महत कार्य की सिद्धि में श्री कृष्ण का योगदान तो व्यवहार कुशलता को ठीक-ठीक न समझ कर उन पर युद्ध-लिप्सु होने का आरोप लगाना अथवा समस्त देशों को युद्ध की भयंकर एवं विनाशकारी ज्वालाओं में झोंककर स्वयं तमाशा देखने वाला बताना, सर्वथा अनुचित है। श्री कृष्ण ने यथाशक्ति युद्ध का विरोध किया, यह हम महाभारतीय युद्ध की आलोचना के प्रसंग में देख चुके हैं। उन्होंने न तो युद्ध को राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान का एक मात्र अनिवार्य उपाय माना और न उसमें कूद पड़ने के लिये किसी को उत्साहित ही किया। यहां तक की वैयक्तिक मानापमान की परवाह किये बिना वे स्वयं पाण्डवों की ओर से संधि प्रस्ताव लेकर हस्तिनापुर गये। यह सत्य है कि इस लक्ष्य को पूरा करने में असफल रहे, परन्तु इसमें संसार को यह तो ज्ञात हो ही गया कि महात्मा कृष्ण शान्ति स्थापना के लिये कितने उत्सुक थे तथा युद्ध के कितने विरोधी थे। उन्होंने स्वयं कहा था कि वे पृथ्वी को युद्ध की महाविभीषका से बचा देखना चाहते हैं।

यह ठीक है कि दुर्योधन ने अपने दुष्ट स्वभाव तथा कुटिल प्रकृति के कारण उनकी बात नहीं मानी, फलतः युद्ध भी अपरिहार्य हो गया, परन्तु लोगों पर यह भी अस्पष्ट नहीं रहा कि पाण्डवों का पक्ष सत्य न्याय और धर्म का पक्ष था तथा कौरव असत्य, अन्याय और अधर्म का आचरण कर रहे थे। संसार के लोगों को सत्य और न्याय का वास्तविक ज्ञान कराने में ही श्री कृष्ण की अपूर्व दूरदर्शिता तथा मेधा का परिचय मिलता है। युद्ध होना ही है, जब यह निश्चित हो गया तो श्री कृष्ण की विचारधारा भी इसी के अनुसार बन गई। फिर तो उन्होंने अत्याचार के दमन और दुष्टों को दण्ड देने के लिये किये जाने वाले युद्ध को क्षत्रिय वर्ण के लिये स्वर्ग का खुला हुआ द्वार बताया तथा अर्जुन को यह निश्चय करा दिया कि आततायियों को मार डालना ही धर्म है। रणक्षेत्र में उपस्थित होते ही अर्जुन में जिन क्लीव भावों का संचार हुआ उन्हें अनार्यजुष्ट, अस्वर्ग्य और अकीर्तिकर बताते हुए श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दे करके युद्ध करने की प्रेरणा दी। वास्तव में क्षत्रिय धर्म का यही यथार्थ रूप था जिसे श्री कृष्ण ने अपनी ओजस्वी वाणी तथा प्रभावपूर्ण शैली में उपस्थित किया। आज हज़ारों वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी श्री कृष्ण की वह ओजस्विनी शिक्षा मन की निराशा, ग्लानि तथा दौर्बल्य को दूर करती है एवं कर्त्तव्य पालन करने के लिये उठने की प्रेरणा देती है।

यह है कृष्ण की राजनीतिज्ञता का किंचित् दिग्दर्शन! उन्होंने अपने जीवन में जहाँ अनेक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया, वहां उन्होंने सामाजिक समस्याओं की भी अवहेलना नहीं की। श्रीकृष्ण वर्णाश्रम धर्म के प्रबल पोषक और शास्त्रीय मर्यादाओं के कट्टर समर्थक थे। उन्होंने स्वयं ''गीता'' में वर्णाश्रम धर्म का विधान करते हुए वर्णों को गुण एवं कर्मों पर आधारित बताया है। उनके अनुसार जो व्यक्ति शास्त्र विधि को छोड़कर मनमाना स्वेच्छाचार करता है, उसे न तो सिद्धि ही प्राप्त होती है और न परलोक में उत्तम गति। परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वे किसी प्रकार की सामाजिक संकीर्णता अथवा कट्टरता के पोषक थे। अनुदारता गतानुगतिकता तथा रूढ़िवादिता के वे प्रबल विरोधी थे। उनकी सामाजिक धारणायें उदारतापूर्ण तथा नीतियुक्त थीं। उन्होंने सदा दलित, पीड़ित एवं शोषित वर्ग का ही साथ दिया। विदुर जैसे धर्मात्मा उनके सम्मान के पात्र रहे। नारी वर्ग के प्रति उनकी महती श्रद्धा थी। कुन्ती, गांधारी, देवकी आदि पूजनीय ऋषि महिलाओं के प्रति उनके मन में सदा आदर, सम्मान तथा श्रद्धा का भाव रहा। सुभद्रा तथा द्रोपदी आदि कनिष्ठ देवियों के प्रति उनका स्नेह सदा बना रहा। वे जानते थे कि मातृ शक्ति का यथोचित सम्मान होने से ही देश की भावी सन्तान में श्रेष्ठ गुणों का संचार होगा।

श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के इन पहलुओं की समीक्षा कर लेने के पश्चात् भी उनके चरित के उस महान् एवं उदात्त पक्ष की ओर ध्यान देना आवश्यक है जिसके कारण वे आध्यात्मिक जगत् के सर्वोत्कृष्ट उपदेष्टा समझे गये और योगेश्वरों में उनकी परिगणना हुई। वे आज भी कोटि-कोटि जनों की प्रेरणा, श्रद्धा तथा निष्ठा के पात्र बने हुए हैं। श्री कृष्ण राजनीतिज्ञ थे, धर्मोपदेशक तथा धर्मसंस्थापक भी थे। वे समाज-संशोधक तथा नूतन क्रान्ति-विधायक भी थे, किन्तु मूलतः वे योगी तथा अध्यात्म-साधना के पथिक थे। उन्होंने जल में रहने वाले कमल की भांति संसार में रहते हुए, सांसारिक वासनाओं से निर्लिप्त रहकर कर्त्तव्य की भावना से आचरण करने के योग की शिक्षा दी।

वे ज्ञान और कर्म के समन्वय के पक्षपाती थे। साथ ही उपासना योग का भी समर्थन करते थे। ज्ञान, कर्म और उपासना का सामंजस्य ही आर्यचिंतन की विशेषता है और यह समन्वय-भावना ही श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में साकार हो उठी थी। श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्द ब्रह्म के परम-उपासक थे और इस सर्वोच्च तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने के पश्चात् भी स्पष्ट कहा कि पूर्णकाम व्यक्ति के लिये यों तो कुछ भी करना शेष नहीं रहता, किन्तु लोक-यात्रा-निर्वाह की दृष्टि से उन्हें भी आर्योचित मर्यादाओं का पालन करना ही पड़ता है। इस प्रकार उन्होंने कालान्तर में परिवर्तित श्रमणवाद-प्रतिपादित निवृत्ति-मार्ग का एकान्ततः अनुसरण करने को अनुचित बताया। श्रीकृष्ण के दर्शन का यही चरम तत्त्व है और यही लौकिक सफलता का भी रहस्य है।

जीवनी की इन विविधतापूर्ण एवं सर्वांगीण प्रवृत्तियों का समन्वित अनुशीलन एवं परिष्कार ही श्रीकृष्ण-चरित्र की विशिष्टता है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण जैसा व्यक्ति इस देश में ही नहीं बल्कि संसार में भी कदाचित् ही जन्मा हो। आर्य मर्यादाओं के अप्रतिम रक्षक राम से उनके विविध व्यक्तित्व की तुलना अवश्य की जा सकती है, परन्तु दोनों के युग तथा जीवन की अन्य परिस्थितियों में मौलिक अन्तर था। राम स्वयं आदर्श राजा थे, किन्तु कृष्ण को आदर्श राज्य संस्थापन का कार्य स्वयं करना पड़ा। कृष्ण तो राजाओं के निर्माता, परंतु स्वयं राजसत्ता से दूर रहने वाले साम्राज्य-संस्थापक थे। राम के समक्ष वैसी कठिनाइयां नहीं आईं जिनसे कृष्ण को जूझना पड़ा। अतः किसी भी दृष्टि से क्यों न देखा जाये, श्री कृष्ण का चरित्र एवं व्यक्तित्व भूमण्डल में अद्वितीय ही माना जाएगा।

मोगा में चतुर्वेद पारायण महायज्ञ का आयोजन किया

आर्य समाज मोगा के भूतपूर्व प्रधान एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार अधिष्ठाता श्री सत्य प्रकाश जी उप्पल ने निज वैयक्तिक धर्म का परिपालन करते हुये विगत दिनों निज निवास पर अथर्ववेद का पारायण यज्ञ कर चतुर्वेद महापारायण यज्ञ सम्पन्न किया। पूर्णाहुति के अवसर पर लिया गया चित्र।

आर्य संस्कृति के प्रति आस्था रखने वाले प्रत्येक आर्य की यह अभिलाषा होती है कि वह अपने जीवनकाल में एक–दो या चारों वेदों का स्वाध्याय करें एवं अपने निवास स्थान पर चारों वेदों का पारायण महायज्ञ भी करें। अनेकों ग्रंथों के रचनाकार, प्रगल्भ वक्ता, सम सामयिक विषयों के लेखक, चिन्तक, विद्वान, साहित्यिक एवं कवित्व के भावों से सुभूषित व्यक्तित्व हो तो स्वाभाविक रूप से उनकी यह अभिलाषा प्राथमिक होगी। उपर्युक्त इन समस्त गुणों से अलंकृत आर्य समाज मोगा के भूतपूर्व प्रधान एवं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के वेद प्रचार अधिष्ठाता श्री सत्य प्रकाश जी उप्पल ने भी निज वैयक्तिक धर्म का परिपालन करते हुये विगत दिनों निज निवास पर अथर्ववेद पारायण यज्ञ कर चतुर्वेद महापारायण यज्ञ सम्पन्न किया और इस प्रकार वास्तविक अर्थ में चतुर्वेदी उपाधि को धारण किया। इस पवित्र महायज्ञ में उनकी सहधर्मिणी श्रीमती प्रोमिला जी, उनके दोनों सुपुत्र एवं पुत्रवधू श्रीमती मालती एवं श्री रोहिताश एवं श्रीमती शिवानी एवं श्री कमलेश्वर का विशेष सहयोग रहा। एतदर्थ श्री सत्य प्रकाश उप्पल एवं उप्पल परिवार के समस्त छोटे बड़े सदस्य साधुवाद के पात्र हैं। उप्पल परिवार से निकट से जुड़े अनेकों परिवार नित्य प्रात: सायं उपस्थित होकर महायज्ञ में निष्ठापूर्वक आहुति डाल कर जीवन को धन्य करते रहे।

पवित्र चारों वेदों का पारायण कर मैं स्वयं भी गौरवान्वित हूं। इससे पूर्व श्री उप्पल जी ने अपने नव निर्मित भवन का नाम इदन्न मम रखा एवं गृह प्रवेश के पश्चात उसी निवास स्थान पर रहते हुये उन्होंने इदन्न मम पुस्तक की भी रचना की। इस पुस्तक में उन्होंने अनेकों प्रसिद्ध वेद मंत्रों की गीत रूप में छन्दबद्ध रचना की जोकि आर्य जगत के लिये बड़े ही गौरव की बात है। इस पुस्तक का प्राक्कथन लिखना भी मेरे लिये सौभाग्य की बात है। यज्ञ के मध्य में अनेकों मंत्रों की विशद व्याख्या भी मैंने की। साथ में पं.सुनील कुमार जी भी प्राय: उपस्थित होते रहे। पूर्णाहुति बड़ी भव्यता के साथ भजन, प्रवचन एवं ऋषि लंगर के साथ सम्पन्न हुई।

उपर्युक्त चारों वेदों के पारायण में अत्यन्त स्वाध्यायशीला विदुषी माता श्रीमती इन्दु पुरी जी का अतिविशेष सहयोग एवं आशीर्वाद रहा। यज्ञो वै श्रेष्ठतम कर्म: संसार का सर्वश्रेष्ठ यज्ञ कर्म कर उप्पल परिवार साधुवाद के पात्र बनकर वर्तमान समय में व्यक्ति, समाज व संस्थाओं के प्रेरणास्रोत बने।

–पं. दिवाकर भारती वैदिक
प्रवक्ता आर्य समाज मोगा

दोआबा आर्य सी.सै.स्कूल नवांशहर के दो अध्यापकों का प्रशंसनीय कार्य

दोआबा आर्य स्कूल नवांशहर के दो अध्यापकों ने सराहनीय कदम उठाते हुए यह निर्णय लिया है कि वे जब तक स्कूल शुरू नहीं होंगे तब तक वेतन नहीं लेंगे। स्कूल के अध्यापक श्री निर्मल शर्मा एवं श्रीमती मनोरमा गौतम ने स्कूल प्रबन्धकों से आग्रह किया है कि उन्हें अस्थायी रूप से सेवानिवृत्त किया जाए। उन्होंने कहा कि जब तक यह महामारी का दौर थम नहीं जाता और स्कूल सुचारू रूप से नहीं चलते तक तक वे स्कूल से वेतन नहीं लेंगे। दोआबा आर्य स्कूल की प्रबन्धक कमेटी ने उनके निर्णय का स्वागत करते हुए उनके त्याग की प्रशंसा की। प्रबन्धक कमेटी के प्रधान ने बताया कि इन दोनों अध्यापकों ने त्याग का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, उसका अनुसरण हर व्यक्ति को करना चाहिए।

तं त्वा नृम्णानि बिभ्रतं सधस्थेषु।
महो दिवः चारु सुकृत्ययेमहे।।

–उ० २.२.३

भावार्थ–हे सर्वव्यापक परमात्मन्! इस बड़े आकाश में और इससे बाहिर भी आप व्यापक होकर, सब धन और बल को धारण करने वाले आनन्द स्वरूप हो। ऐसे आपको उत्तम वैदिक कर्म करते हुए और वैदिक स्तोत्रों से ही आपकी स्तुति करते हुए हम प्राप्त होते हैं।

श्री सागरचंद ठुकराल, श्री अशोक ठुकराल, श्री अश्विनी ठुकराल एवं श्री सुभाष ठुकराल अपने निवास स्थान सुलतानपुर लोधी में हवन यज्ञ करते हुये।

शोक समाचार

स्त्री आर्य समाज साबुन बाजार (श्रद्धानंद बाजार) लुधियाना की सदस्या श्रीमती शुभलता भंडारी धर्मपत्नी श्री वेद प्रकाश भंडारी लुधियाना का दिनांक 31 अगस्त 2020 को कोरोना महामारी से निधन हो गया। उनके निधन से स्त्री आर्य समाज साबुन बाजार लुधियाना की सभी सदस्याएं अति शोक संतप्त हैं। उनका अन्त्येष्टि संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से किया गया। स्व. श्रीमती शुभलता भंडारी जी धार्मिक विचारों की महिला थी। आर्य समाज में यज्ञ, सत्संग आदि कार्यक्रमों में बढ़–चढ़ कर भाग लेती थी। श्रीमती शुभलता भंडारी जी के श्रेष्ठ जीवन और उत्तम कर्मों को स्मरण करते हुए आत्मा–परमात्मा तथा जीवन–मृत्यु पर विचार करते हुए स्त्री आर्य समाज साबुन बाजार लुधियाना के सभी सदस्यों ने श्रद्धांजलि अर्पित की। परमपिता परमात्मा दिवंगत आत्मा को अपने चरणों में स्थान देकर शान्ति व सद्गति प्रदान करें एवं शोक संतप्त परिवार को इस दु:ख को सहन करने की धैर्य शक्ति प्रदान करें।

–श्रीमती राजेश शर्मा प्रधाना स्त्री आर्य समाज

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक–प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**